वीर संवत २४९२, फाल्गुन शुक्ल ४, गुरुवार

दि. २४-२-१९६६, ढाल-६, श्लोक-१०. प्रवचन नं. ५२

'दौलतरामजी' कृत यह 'छहढाला' है। इसकी यह छठवीं ढाल चलती है। छठवीं का १०वाँ श्लोक है। क्या अधिकार है ? शुद्धोपयोग। आत्माने अनन्तकाल से अनन्त बार शुभ और अशुभ के परिणामरूपी उपयोग तो अनन्त बार किया.. समझ में आया ? यह तो कल कहा था। देहादिक परपदार्थों का तो इसने कुछ किया नहीं, कभी कर सकता ही नहीं। अपने आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, पुत्र, पैसे का तो कुछ जरा-सा भी नहीं कर सकता।

मुमुक्षु :- सब करता है न ?

उत्तर :- कुछ नहीं करता, मूढ मानता है कि मैं करता हूँ। यह भाव करता है, शुभ और अशुभभाव। जिन्हें यहाँ अशुद्ध उपयोग का आचरण कहा जाता है। इसने अनादि से अपनी दशा में अशुद्ध उपयोग का आचरण अनन्तबार निगोद से लेकर नौंवे ग्रैवेयक गया,वहाँ अशुद्ध उपयोग का आचरण किया है। नहीं किया (तो) शुद्धोपयोग का आचरण। वाणी, यह शरीर चलता है-उस क्रिया को भी आत्मा ने कभी किया ही नहीं; वह तो जड़ की अवस्था की पर्याय-कार्य है। पर्याय कहो या जड़ का कार्य कहो या जड़ का भाव कहो। उस जड़ के भाव को आत्मा कभी नहीं करता। अपना स्वभाव शुद्ध है। उसकी अनन्तकाल में इसने दृष्टि की नहीं; इस कारण इसकी पर्याय में अशुद्ध उपयोग का आचरण , अशुद्ध परिणाम, अशुद्ध का भाग-शुभ और अशुभ दोनों अनन्त बार किये (और) चार गतियों में भटका।

अब यहाँ शुद्धोपयोग की और शुद्ध स्वरूपाचरण चारित्र की व्याख्या है कि जो कभी अनन्तकाल में नहीं किया और करे तब कैसी दशा होती है ? प्रथम अनुभवकाल, प्रथम आत्मा का सम्यग्दर्शन प्राप्ति का काल, उस काल में शुद्धोपयोगरूपी आचरण किस प्रकार होता है ?

उसका यह वर्णन है और तत्पश्चात् भी जब-जब आत्मा ध्याता-ध्यान-ध्येय को चूककर अभेदपने का उपयोग करे, तब भी ऐसा ही शुद्धोपयोग का आचरण होता है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म। नौंवी गाथा हो गयी, देखो !

अब, '**स्वरूपाचरण चारित्र का लक्षण**' कहते हैं, देखो !'**और निर्विकल्प ध्यान।**'

परमाण नय निक्षेपकौ न उद्योत अनुभव में दिखै;
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं;
चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥

आहा..हा..! समझ में आया ? समझ में आता है ? पहले उसकी विधि तो जाननी पड़ेगी या नहीं ? अनन्तकाल में यह चीज क्या है, उसकी विधि भी जानने में न आवे तो अन्दर में स्वरूप का, अनुभव का प्रयोग किस प्रकार करे ? ऐसे का ऐसा शुभ क्रियाकाण्ड करते-करते कल्याण हो जाएगा-ऐसा नहीं है। समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति,तप, जप के शुभभाव हो, उनसे आत्मा का कल्याण होगा-ऐसा तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु :- धीरे-धीरे हलका होता जाए।

उत्तर :- उससे धीरे-धीरे हलका होता ही नहीं। हलकी चीज जो निर्विकल्प पदार्थ है, उसे दृष्टि में ले तब हलका होता है। समझ में आया ?

यहां तो यह विशेष बात करते हैं कि बाहर के जड़ आदि निमित्त साधन तो आत्मा के अनुभव में साधकरूप है ही नहीं, परन्तु आत्मा के अन्तर अनुभवकाल में-स्वरूपाचरणचारित्र के काल में कषाय की मन्दता का भेद का विकल्प (हो), वह भी उसे साधकरूप सहायक नहीं है।

यहाँ तो वे नय, निक्षेप, प्रमाण, जिनसे वस्तु की पहले सिद्धि करे। नय अर्थात् एक गुण को सिद्ध करने का जो अंश ज्ञानअंश, जिससे गुण की सिद्धि हो कि ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है। प्रमाण से द्रव्य और पर्याय की सिद्धि करे। त्रिकाल द्रव्य है, वर्तमान अवस्था है। गुण, भेद है-

ऐसा प्रमाण द्वारा निश्चित करे। नय, निक्षेप और प्रमाण। निक्षेप (अर्थात्) वस्तु की स्थिति। वास्तविक द्रव्य किसे कहते हैं, भाव किसे कहते हैं-उसका विचार से निर्णय करे। जिस प्रथम ज्ञान में वह दशा आती है, उस नय-निक्षेप-प्रमाण के ज्ञान का विकल्प भी जहाँ स्वरूप के अनुभव में साधक नहीं होता।

बहुत अन्तर है। अभी की मनुष्यों की ऐसी प्रवृत्ति में उसे ऐसा समझा दिया कि (तुम) यह करोगे तो करते-करते (कल्याण हो जायेगा)। शुभपरिणाम करना, शुभयोग करना। करना, होता है परन्तु वह करते-करते तुम्हारा अनुभव सम्यग्दर्शन होगा... समझ में आया ? ऐसा मानकर उसकी जिन्दगी निष्फल चली जाती है।

यहाँ तो आचार्यों का किया हुआ, 'समयसार' की गाथा है, उसका ही यह श्लोक स्वयं रखा है। समझ में आया ? है न ? तेरहवीं गाथा का है। तेरहवीं गाथा का है न ? **'उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं'** नौंवां श्लोक है। वह काव्य दसवाँ है। 'समयसार' का नौवां श्लोक है, उसकी बात इस दसवें श्लोक में पण्डित 'दौलतरामजी' करते हैं, उनके घर की कुछ है नहीं। हिन्दी में सादी-सरल भाषा में, संस्कृत में जो था, उसे सरल भाषा में रखा है। इतनी बात है, दूसरी कोई बात है नहीं। यह नौवें श्लोक का ही अर्थ है, देखो !

उस स्वरूपाचरणचारित्र के काल में साधकजीव को ऐसा लेना। साधाक-उसमें मुनि लिया है न ? आत्मा अपने अन्तर स्वरूपाचरणचारत्र के शुद्धोपयोग के काल में क्या होता है ? भले एक आठ वर्ष की बालिका हो, छोटा मेढ़क हो, मच्छ हो-वह भी जब-जब आत्मा के सम्यक् अनुभव का प्रथम (बार) प्राप्त करता है, तब उसको ऐसी दशा होती है। समझ में आया ? आहा..हा... ! भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति अखण्डानन्द के अन्तर स्वरूप का शुद्धोपयोग का आचरण, वहाँ **'आत्म-अनुभव में प्रमाण, नय, निक्षेप का विकल्प प्रगट दिखायी नहीं देता।'** सूक्ष्म बात है न ?

भगवान आत्मा अपने ज्ञानानन्दस्वरूप में अन्तर्मुख होकर स्वरूपाचरण के शुद्धोपयोग में रहे, तब यह नय-जो एक गुण को सिद्ध करने का अंश है, वह वस्तु तो यहाँ अनुभव में सिद्ध है। उसे सिद्ध करने का नहीं रहा। प्रमाण से पूरी सिद्ध करनी थी, वह वर्तमानदशा अनुभवकाल में

पूर्ण चीज की क्या चीज है, वह अनुभव करता है, इसलिए उसे प्रमाण से सिद्ध करने की बात नहीं रहती; निक्षेप से सिद्ध करने की बात नहीं रहती। द्रव्य की योग्यता है, भाव प्रगट दशा में दशा का अनुभव स्वभावसन्मुख वस्तु तो अब सूक्ष्म हो, वह आयेगी या नहीं ?

कहते हैं, आहा..हा... ! भगवान आत्मा अपने निजस्वरूप के सन्मुख, स्वरूप के सन्मुख, विकार से विमुख और नय, निक्षेप और प्रमाण के भेद के विकल्प से भी उपेक्षा करके-विमुख होकर तथा स्वरूप के साधन में एकाकार होता है, वहाँ नय, निक्षेप, प्रमाण का विकल्प नहीं रहता। आहा..हा.. ! अद्‌भूत सूक्ष्म, भाई ! मुनि भले लिखा, साधक (लेना)। पहले कहा साधक है। समझ में आया ?

साधकदशा शुरू होने पर चौथे गुणस्थान में, पाँचवे में या मुनि की शुद्धोपयोग के काल में ऐसी स्थिति होती है। आहा..हा... ! जिसे प्रमाण अर्थात् पूरी चीज का ज्ञान-यह सामान्य वस्तु ध्रुव है, वर्तमान अवस्था पर्याय है-दो के प्रमाणज्ञान द्वारा निश्चित किया है। अन्यमतियों से विपरीत जो कुछ बात अन्यमति कथित है, उससे सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित बात सामान्य ध्रुव, विशेष पर्याय-इस प्रकार प्रमाणज्ञान द्वारा निश्चित किया, परन्तु जहाँ अन्तर में अनुभव होने पर वह विकल्प वहाँ नहीं रहता। समझ में आया ?

एक माललेना हो, माल, पकवान आदि-तो भाव पूछते हैं कि यह कितने रुपये का शेर है ? कि भई पाँच रूपये का शेर। तराजू कहाँ है ? तराजू, तराजू है न ? तराजू लाओ, घड़ा करो, घड़ा सही है या नहीं ? फिर उस ओर जिस तरफ माल डाले, उस ओर थोड़ा-सा मोम-बोम, लाख चिपका दिया हो (तो) पाव शेर, आधा शेर-इतना माल कम तुले। घड़ा करते हैं या नहीं पहले ? घड़ा करता है, घड़ा करते हैं। तराजू समरूप है या नहीं ठीक से ? भाव करे, फिर तराजू की तोल ठीक घड़ा करे। हमारी काठियावाड़ी में घड़ा कहते हैं। घड़ा कहते हैं न ? ऐ..ई..! तराजू के घड़े को और तोल के काँटे को (बराबर मिलाते हैं), फिर खाते समय तीनों भूल जाते हैं। खाते समय रटा करता होगा ? पाँच रूपये का शेर यह काँटे (तराजू) का घड़ा करके लिया है और यह पाँच शेर लियाहै, पाँच शेर लिया है। (ऐसा करे तो) स्वाद नहीं आता। समझ में आया ?

वैसे भगवान आत्मा, नय-निक्षेप-प्रमाण के ज्ञान द्वारा यह वस्तु क्या है ? उसका पहले सत्समागम से श्रवण आदि करके निश्चय किया हो.. अनन्तकाल में अनन्त अज्ञानी कहते हैं वैसा नहीं, परन्तु सर्वज्ञ कथित आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। एक समय में अनन्त गुण की पर्याय है-ऐसे प्रमाण से उसका ज्ञान विकल्प से, विकल्प द्वारा, मन के संग द्वारा यह निर्णय किया। नय से निर्णय किया कि एक-एक गुण एक-एक नय से ज्ञाता होता है। निक्षेप से निर्णय किया कि द्रव्य त्रिकाल अनन्त केवलज्ञान को प्राप्त होने योग्य ही यह आत्मा है। सिद्धपद की पर्याय को प्राप्त होने की योग्यतावाला यह द्रव्य है। अन्दर भाव में मैं जितना एकाग्र होऊँ, उतना वर्तमान निर्विकल्पभाव प्रगट होता है-ऐसा पहले निर्णय करे, परन्तु निर्णय करने के काल में यह होता न हो। दूसरा भाव पूछे। उसमें उस समय खाता न हो, और खाता हो तो कोई तुरन्त दुकान से उठा लेता है ? लाओ ! भाव पूछे बिना खाने लगे ? भाव मेरे पूछना नहीं, तराजू लाओ खाने लगू। वह .. मारे, कौन है यह ? भाई !

इसी प्रकार आत्मा उसमें गुण, उसकी दशा, उसमें विकार क्या है-उसे पहले भलीभाँति ज्ञान द्वारा निर्मय करना चाहिए। कितनी कींमत में आत्मा मिलता है और कीतनी कींमत चाहिए उतनी अभी तक भरी नहीं-यह पहले भलीभाँति निर्णय करना चाहिए; निर्णय करने के बाद अनुभव के काल में, वह खाता हो तब यह विचार नहीं रहता, यह यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? कुछ समझा ही न हो, पहले समझे बिना ऐसे-ऐसे करने बैठे, उसमें क्या समझे वह ? ध्यान करो.. परन्तु किसका ध्यान ? क्या चीज है, कितने गुण हैं... आगे कहेंगे, देखो ! अन्दर। '**सुगुण करण्ड...**' यह तो सुगुण करण्ड (अर्थात्) अनन्त गुण का करण्ड है आत्मा। समझ में आया ? 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' आता है न ? देखो न ! 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' पूरा रत्न का करण्ड भरा है। 'समन्तभद्राचार्य'।

यहाँ सुगुणकरण्ड (कहते हैं)। भगवान आत्मा एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त-अनन्त गुण का वह करण्ड है। खोल तो खा। समझ में आया ? अन्दर एकाग्र हो तो अनुभव कर। पर के प्रति जितने विकल्प जाएँ, उतने में उतना वह अनुभव नहीं होता। अद्‌भुत बात ! लोगों को यहाँ पहुँचना उन्हें कठिन लगता है, इसलिये मानों किसी दूसरे रास्ते से मिल जाए (-ऐसा ढूँढते हैं)।

कहते हैं '**प्रमाण, नय, निक्षेप का विकल्प (उद्योत) प्रगट दिखाई नहीं देता.. उद्योतन दिखै...**' अर्थात् है नहीं, इसका अर्थ ऐसा है। '**प्रगट दिखाई नहीं देता...**' अर्थात् अबुद्धिपूर्वक कोई विकल्प हो, उसकी बात नही है। भगवान आत्मा.. रात्रि में कहा था न ? ध्याता, ध्यान और ध्येय-इस विकल्प का भेद नहीं है। वहाँ (९वीं गाथा में) कहा था न ? '**चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।**' भगवान आत्मा चैतन्य भगवान कर्ता और शुद्ध-पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा की शुद्धदशा, वह आत्मा का काम, वह कर्म, वह कर्तव्य, वह कार्य और वह चैतन्य परिणमता है, चैतन्य परिणमता है, राग नहीं, पुण्य नहीं, वह चैतन्य ज्ञायकमूर्ति भगवान परिणमन कर जो निर्मल क्रिया हुई, वह चैतन्य की क्रिया (इन) तीन प्रकार के विचार में भेद नहीं रहता। ओ..हो..हो... ! समझ में आया ?

ऐसे यहाँ तीन का विक्षेप (नहीं है) परन्तु ऐसा विचार रहता है कि, '**मैं सदा (दृग-ज्ञान) अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यमय हूँ।**' यह भी अभी विकल्प है, तब यह विचार चलता है। समझ में आया ? नय, निक्षेप, प्रमाण का ज्ञान किया था, वह विकल्प छूट गया। अब यह मैं हूँ-ऐसा आया, परन्तु है विकल्प-राग। मैं अनन्त दर्शनमय हूँ, मुझ में अनन्त दर्शन है। दृष्टान्तस्वरूपभाव, वह अनन्त है। जिसका स्वभाव हो, उसे माप-अन्त नहीं होता, माप नहीं होता, अमाप वस्तु है।

वस्तु-दृष्टा गुण अनन्त दर्शन है, अनन्त ज्ञान है। बेहद ज्ञान है। अकेला ज्ञान की ही मूर्ति चैतन्यस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव-ऐसा अनन्त ज्ञान, वह मैं हूँ। मैं अनन्त सुख हूँ, अनन्त आनन्द हूँ, देखो ! यह पहले विकल्प (आते हैं)। अनुभव शुद्धोपयोग होने के पहले इन विकल्पों का विचार होता है। आहा..हा... ! अद्भुत ! वहाँ तो कहीं सुनने मिले-ऐसा नहीं है। नहीं ? 'रतनगढ़' में क्या मिले ? धूल के रत्न मिले। यह रत्न मिले-ऐसा है ? यह चैतन्यरत्न। चैतन्य रत्नाकर-चैतन्य में चैतन्य के रत्नों का सागर भरा है यह। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्तगुने गुण। आकाश के प्रदेश से अनन्तगुने गुण आत्मा में है। आकाश जो सर्वव्यापक है, सर्व व्यापक आकाश, जिसका माप नहीं, जिसकी हद नहीं-उसके प्रदेश जितने अनन्त हैं, उससे एक आत्मा में अनन्तगुने गुण हैं। समझ में आया ? उनमें भी यह गुण मुख्य है, इससे मुख्य बात ली है। अनन्त चतुष्टय।

मैं अनन्तदर्शन (स्वरूप हूँ)। मैं राग हूँ और पुण्य हूँ-ऐसा नहीं, मैं कर्मवाला हूँ-ऐसा नहीं। सम्यक् अनुभव शुद्धोपयोग के काल पहले भी मैं रागवाला हूँ और कर्मवाला हूँ-ऐसा नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ? मैं तो अनन्त आनन्दमय हूँ। आहा..हा... ! जहाँ क्लेश की को गन्ध नहीं, जिसमें अशान्ति के भाव की गन्ध नहीं-ऐसा मैं अनन्त आनन्द के वास से बसा हुआ तत्त्व हूँ। ऐसे विकल्प, मन्दराग के विकल्प द्वारा भी, मन के संग द्वारा भी ऐसा विचार शुद्धोपयोग की भूमिका हुए पहले ऐसा एक विचार होता है। आहा..हा... ! अद्‌भुत बात ! समझ में आया ?

छह खण्ड का राजा हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, वह ध्यान करने बैठे तब इस प्रकार विचार करता है। हो उसके घरमें; छह खण्ड का राज्य मुझ में नहीं, मैं तो अनन्त आनन्दमय हूँ। ऐसा विकल्प उठता है तो अनन्त आनन्दमय हूँ-ऐसा विकल्प अभी उठा है, उस काल में अभी शुद्धोपयोग का अनुभव नहीं है। अभी आँगन है। यह आँगन अब। यह आँगन छोड़कर जाए तब अन्दर में अनुभव होता है। आँगन कहते हैं ? आँगन-आँगन कहते हैं। कुछ समझ में आता है ? आहा..हा... !

वस्तु है न ? और वस्तु है तो अनन्त गुण बसे हुए हैं। वस्तु है तो उसमें अनन्तगुण बसे हुए हैं। जैसे, वास्तु करे तो, वास्तु करे तो कोई मकान में करते हैं या जंगल में करते होंगे ? ऐसे वस्तु भगवान आत्मा है तो उसमें अनन्त.. अनन्त.. संख्या में गुण बसे हुए हैं। उसमें अब प्रवेश करने का वास्तु करने, ठहरने जाता है। उससे पहले ऐसा विकल्प आता है कि, मैं तो अनन्त आनन्दमय हूँ। मुझे स्त्री है या पुत्र है या राज है या परिवार है, कर्म है या मैं रागवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, पापवाला हूँ-वहाँ यह विकल्प नहीं। समझ में आया ? वह तो आगे 'रहित कहेंगे'। '**च्युत कलनितैं**'। यह कहेंगे।

मैं आ..हा... ! अस्ति महासत्ता धाम भगवान अस्तित्व के भाववाला पदार्थ, अस्तिवाला (है) तो अस्तिवाले में अस्तित्व क्या है ? फिर नहीं क्या-यह बाद में कहेंगे। कलनितैं रहित हूँ; अशुद्ध आदि विकल्पों से तो मैं रहित ही हूँ। समझ में आया ? अद्‌भुत सूक्ष्म बात ! भाई ! इस मनुष्य को- लोगों को सम्यग्दर्शन का उपयोग क्या ? शुद्ध उपयोग सम्यक् काल में स्वरूपाचरण चारित्र (क्या) ? इसका पता नहीं। शुभभाव से होगा; आगे जाने पर शुद्धोपयोग

आठवें (गुणस्थान) में होगा, जाओ ! उसे कभी चौथा गुणस्थान नहीं होगा, उसे कभी आठवाँ नहीं आयेगा।

कहते हैं, यह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त .. सब भूल गया। जो नय, निक्षेप, प्रमाण द्वारा साधक मानता, वह साधकपना भी छूट गया। विकल्प में साधक मानता है कि यह सब वस्तु को सिद्ध के साधन हैं, वे छूटे। रहा इतना विकल्प। 'अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यमय हूँ।' पूर्ण वीर्यमय-पूर्ण बलमय, पूर्ण सामर्थ्यमय। मेरी सामर्थ्य में अनन्त सामर्थ्य पड़ी है। अरे... ! मैं हीन हूँ, अथवा कर्म ने मेरी सामर्थ्य हीन की है-यह तो यहाँ बात ही नहीं है। कर्म ने मेरा वीर्य हीन किया है-यह बात तो है ही नहीं, परन्तु मेरा वीर्य बलहीन है मेरे कारण-यह (भी) यहाँ नहीं है। समझ में आया ? आत्मा के स्वरूपचारित्र के काल में आत्मा का अनुभव, यह सम्यग्दर्शन होने से (पहले), स्वरूप का अनुभव होने से पहले यह विचार सम्यग्दृष्टि को होता है कि सम्यग्दर्शन होने से पहले और अनुभव जब-जब हो, तब पहले धर्मी जीव को मैं कर्म से घाता हुआ हूँ, कर्म से मेरा ज्ञान घाता गया है-यह विचार उसे नहीं होते; वैसे ही मेरा ज्ञान मुझसे हीन है-यह भी विचार नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

अन्तर आत्मा के अनुभव में, आत्मा के सम्यग्दर्शन के अनुभवकाल में, सम्यग्दर्शन इस अनुभवकाल में मेरा ज्ञान ज्ञानावरणी ने घात किया है-यह विचार के काल में यह विचार होता ही नहीं परन्तु मेरा ज्ञान अल्प मुझसे हुआ है-यह बात भी उसके विकल्प में नहीं। समझ में आया ? मैं तो अनन्त ज्ञानमय हूं, वस्तु.. द्रव्यदृष्टि करनी है न ? अनन्त.. अनन्त ज्ञानमय भगवान आत्मा है-ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव के शुद्धोपयोग के काल के पहले ऐसा आत्मा का विचार करता है। आहा..हा... ! पैसावाला हूँ न ! -ऐसा यहाँ नहीं कहते। 'वाला' तो कितने लगे ? पैसेवाला और लड़केवाला और स्त्रीवाला और.. वाला-वाला कहते हैं न ? वह पैर में वाला (बालतोड़ नामक रोग) निकलता है न ? आहा..हा... !

सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव आत्मा के शुद्ध अनुभव के काल पहले या ऐसा स्वरूपचारित्र आचरण-स्वरूपाचरणचारित्र, भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु के अन्तर आचरण में स्थिर होने से पहले की उसकी भूमिका में ऐसे विकल्प होते हैं। अनन्तज्ञान हूँ, हीन ज्ञान नहीं; अनन्त ज्ञान हूँ; अल्पदर्शन, हीनदर्शन नहीं, पूर्ण दर्शन हूँ; अल्पसुख नहीं; दु:ख तो नहीं-दु:ख तो नहीं; अल्प

सुख भी नहीं, अनन्त सुख हूँ। आहा..हा...! अनन्त वीर्य हूँ। वीर्य को अन्तरायकर्म ने रोका-यह तो है ही नहीं, परन्तु वीर्य मुझसे (स्वयं से) हीन हुआ, यह भी अनुभव के पहले यह विचार नहीं। आहा..हा...! यहाँ तो पर्यायदृष्टि उड़ाना है न ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन के अनुभवकाल में, चौथे गुणस्थान में अनुभव होता है, पाँचवे गुणस्थान में आत्मा का अनुभव होता है, तब भी आत्मा अनुभव में आये उसके पहले ऐसे विकल्प की-विचार की धारा होती है। अनन्त बलमय हूँ, मेरे बल को मर्यादा-हद नहीं; भले क्षेत्र इतना हो, इतना क्षेत्र (है) परन्तु उसका स्वभाव बेहद.. बेहद... अचिन्त्य आनन्द, पूर्ण आनन्द, पूर्ण बल, पूर्ण ज्ञान-दर्शनमय हूँ। आहा..हा..! इतनी प्रतीति का विकल्प तो आत्मा के स्वरूपाचरण अनुभवकाल पहले उस भूमिका में उसे आता है। आहा..! समझ में आया ?

'**(मो विषै) मेरे स्वरूप में अन्य राग-द्वेषादिक भाव नहीं है।**' देखो ! भगवान आत्मा अनन्तदर्शन, आनन्द में अन्तर अनुभवकाल में जाता है, अनुभव में जाता है, अपने घर में जाता है, उससे पहले राग, दया, दान, विकल्प-यह मुझमें है ही नहीं। आहा..हा...! ऊँची बात है, भाई ! यह अन्तिम, मुख्य निर्विकल्प आत्मा के उपयोग का ध्यान.. समझ में आया ? भगवान आत्मा.. मैं तो बेहद दर्शन, ज्ञान, चारित्रमय हूँ और जो पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, उससे रहित हूँ, उस सहित नहीं। आहा..हा...! समझ में आया ? परन्तु है न ? कौन कहता है ?

भगवान आत्मा अनन्त बेहद आनन्द, ज्ञान, दर्शन का दरिया-समुद्र चैतन्य रत्नाकर (है), उसमें मैल कैसा ? सम्यग्दृष्टि अनुभव करने के काल पहले ऐसा विचार करता है। आहा..हा...! यहाँ तो अभी उसे अरे..रे..! हम तो कर्मवाले हैं, शरीरवाले हैं, और रागवाले हैं और.. अरे...! यह तो पर्यायदृष्टि का विषय हुआ, वस्तु कहाँ आयी ? समझ में आया ? वस्तु कहाँ आयी ? वस्तु ऐसी भगवान परमानन्द की मूर्ति, एक सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग में शुद्ध चिदानन्द भगवान आत्मा-ऐसा मैं, राग-पुण्य-पाप के विकल्प से राग से रहित हूँ-ऐसा तो विचार-शुद्ध भगवान आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करने से पहले, उस भूमिका में ऐसे विकल्प आते हैं। आहा..हा..! '**मेरे स्वरूप में (आन)...**' 'आन' आया न ?

परमाण नय निक्षेपकौ न उद्योत अनुभव में दिखै;

दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।

यह तो 'छहढाला' है। मेरे भगवान आत्मा में, इस अनुभव में धर्मीजीव, अनुभव हुए पहले यह विचार करता है। 'आन भाव जु मो विखै'। नहीं। यह कर्म, शरीर तो नहीं, परन्तु पुण्य और पाप का जो राग होता है, वह मुझ में नहीं है। समझ में आया ? और '**(मैं) मैं साध्य (और मैं) साधक...**' देखो ! यह सम्यक् अनुभव का आनन्द अनुभव अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव।

अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रस कूप;

अनुभव मारग मोक्ष को अनुभव मोक्षस्वरूप ।।

यह अनुभव। आत्मा के आनन्द के अनुभव में जो शुद्धोपयोग प्रगट होता है, उससे पहले की दशा में साध्य वस्तु स्वरूप, साधक मैं और.. समझ में आया ? देखो ! साधक मैं और साध्य वस्तु। पर साधक तो नहीं। मैं साध्य-साधक, भाई ! ऐसा है न ? क्या कहते हैं ? सुनो ! मैं साध्य-साधक। सम्यक् अनुभव पहले इस विकल्प का विचार ऐसा होता है, वह राग की मन्दता मुझे साधक है-ऐसा नहीं मानता है। नय, निक्षेप और प्रमण से जो विचार किये, वे मुझे साधक है-ऐसा भी नहीं मानता है। मैं साध्य और मैं साधक हूँ। देखो ! विशेषता ! मैं साध्य पूर्णानन्द की प्राप्त करनेवाला और मैं साधक। मेरे शुद्धभाव का साधन-साधक मैं ही हूँ, राग-पुण्य, दया, विकल्प वह साधक-फाधक है नहीं। आहा..हा... !

मैं... है न ? '**मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितै।**' मैं साध्य और मैं साधक (हूँ)। देखो ! यह साधक की व्याख्या. दुनिया तुफान करती है न कि यह साधक चाहिए, यह साधक चाहिए। अरे.. ! सुन न अब ! वह तो व्यवहार साधन की बात की है। (जो) साधन नहीं है, उसे साधन कहने का नाम व्यवहार है। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और अनन्त ज्ञान का अनुभव करने से पहले मैं साध्य और साधक मैं ही हूँ। मेरा पूर्ण स्वरूप, वह साध्य और साधकरूप परिणमता हूँ, वह साधक मैं ही हूँ। कोई विकल्प साधक है, कषाय की मन्दता मुझे साधक-मदद करती है और मैं पूर्ण साध्य परमात्मा हूँ (इसका) निषेध करते हैं। ऐ..ई.. ! भाई !

'पंचास्तिकाय' का साध्य-साधक, वह तो व्यवहार की बात हुई। व्यवहार के समय

विकल्प-मन्दकषाय (होते हैं)। शुद्ध चिदानन्दस्वभाव का आनन्द का अनुभव होवे, तब उस मन्दकषाय का साधकपना पंचास्तिकाय में कहा है। उसे यहाँ उड़ा दिया है। समझ में आया ?

'**मैं साध्य साधक मैं अबाधक।**' मैं ही साध्य-साधक हूँ और कर्म तथा '**उनके फलों को विकल्परहित...**' देखो ! कर्म और उसका फल.. जड़कर्म और उसका फल रागादि का जुड़ान होकर होना वह, अल्पज्ञान, अल्पदर्शन का जड़ान होकर होना वह, उन फलों के विकल्प रहित हूँ। उस विकल्प रहित हूँ, भेदरहित हूँ। आहा..हा..! समझ में आया ? विकल्परहित कैसा हूँ ?

'**(चित्पिंड).. ज्ञान, दर्शन चेतनास्वरूप...**' मैं तो चित्पिण्ड हूँ। चित्पिण्ड-चेतना हूँ। ज्ञान-दर्शन भगवान आत्मा। पिण्ड हूँ-ऐसा कहा है। चित्पिण्ड हूँ। पहले मैं साधारण ज्ञान-दर्शन लिया। पिण्ड, पिण्ड, जथ्था, समूह। अकेला ज्ञान का पिण्ड-पूंज हूँ। आत्मा ज्ञानपूंज हूँ-ज्ञान का ढेर हूँ।

'**चंड...**' '**निर्मल तथा ऐश्वर्यवान...**' मैं निर्मल और पूर्ण ईश्वर-शक्तिवान हूँ। मैं ही ईश्वर-पूर्ण समर्थ हूँ। आहा..! यह अनुभव होने के पहले विकल्प में ऐसा आता है। समझ में आया ?'**निर्मल तथा ऐश्वर्यवान...**' चण्ड में उग्रता कही। उग्रता गिनी है न ?

'**अखण्ड...**' '**सुगुणों का भण्डार..**' मैं भगवान आत्मा अखण्ड हूँ। गुण में खण्ड क्या ? अनन्त ज्ञानादि अनन्त गुणों का रत्नाकर प्रभु, अनन्त गुणों का मैं करण्ड-भण्डार हूँ। जितनी केवलज्ञान आदि ऋद्धि प्रगट होगी, वह मेरे भण्डारमें से प्रगट होगी, भण्डार को खोलकर उसमें से निकलेगी। वह राग को खोलकर उसमें से निकलनेवाली नहीं है। आहा..! अद्भुत रचना है.. यह तो हिन्दीभाषा में 'दौलतरामजी' की है-'छहढाला'। समझ में आया ? सरलतम भाषा में रचना की है।

मैं भगवान आत्मा अनन्त आनन्दमय हूँ, मेरे अनन्त शुद्ध रत्नकरण्ड में भरा हुआ तत्त्व कैसा है ?'**अखण्ड सुगुणों का भण्डार...**' मैं ही आत्मा अनन्त गुण का भण्डार हूँ। ऐ..ई..! कठिन (लगे), सुना न हो। ऐसा मैं ? ऐसा मैं ? हम तो यह घाते गये हैं, कर्म से घाते पामर हैं। तू अभी आँगन में आने योग्य नहीं है। स्वरूप के अनुभव से पहले आँगन चाहिए, उस आँगन की भी तेरी तैयारी नहीं है। आहा..हा...! समझ में आया ?

'**अखण्ड सुगुणों का भण्डार...**' आहा..हा... ! इसे अभी इसका विश्वास (नहीं आता)। इस राग, विकल्पसहित के विश्वास में ऐसी चीज होती है। समझ में आया ? यह मन के विकल्पसहित विचार हों, तब ऐसा आत्मा है-ऐसा अभी तो प्रतीति में वर्तता है। रागहित प्रतीति, हाँ ! अनुभव बाद में। सुगुणों का भण्डार तथा '**(कलनितैं), किलनितैं.. अशुद्धता से रहित हूँ।**' बिलकुल सामान्य जो रागादि कहा था, उसे अब.. समझ में आया ? बिलकुल (रहित हूँ)। '**आन**' कहा था न ? अन्य.. मेरे अतिरिक्त तो अन्य हैं, रागादि अन्य थे न ? 'आन'-अन्य भाव मुझ में नहीं है, परन्तु यहाँ तो यह सब जो राग-द्वेष सब जितने विकारीभाव आदि हैं, उस समस्त अशुद्धता से रहित हूँ। आहा.. !

यह वीर्य की पर्याय, यह ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय इतना वहाँ जोर से विकल्प के सहित का काम करे। ऐसा मैं पर से रहित हूँ, समस्त अशुद्धता से रहित हूँ-ऐसा मैं पर से रहित हूँ, समस्त अशुद्धता से रहित हूँ-ऐसा उसके विकल्पज्ञान में वीर्य में इतना जोर आया, तब विकल्प छूटकर अनुभव में जाए तब विकल्प नहीं रहते। समझ में आया ?

यहाँ 'दौलतरामजी' ने मुनिपने के अधिकार में यह लिया है। मूल तो मुनिपने का अधिकार है, क्योंकि यहाँ चारित्र की प्रधानता से वर्णन किया है, परन्तु जो पहला स्वरूपाचरण है, वह तो वहाँ से शुरू हो गया है। 'परद्रव्य से भिन्न आत्मद्रव्य (की) रुचि भला है' आता है न ? यह गाथा हुई, यह गाथा है इसमें; उसमें लिया है।

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।

यह ('समयसार' का) छठवाँ कलश है। समझ में आया ? उसमें से लिया है। बारहवीं गथा (का कलश है)। '**द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्**' उसमें यह बात आ गयी है। समस्त द्रव्यों से, राग से पृथक् मेरी चीज है-ऐसा जो अनुभव, परद्रव्य से भिन्न होना, यह निर्विकल्प प्रतीति और अनुभव है। दर्शनप्रधानता में यह कथन है। यहाँ इन्होंने चारित्रप्रधान कथन में यह रखा है, परन्तु स्वरूपाचरणचारित्र तो चौथे गुणस्थान से शुरु हो गया है। उसकी विशेषता का वर्णन यहाँ मुनिपने में डाला है। समझ में आया ? कोई कहे कि चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरणचारित्र नहीं

होता (तो) ऐसा नहीं है। यह तो भाई ने लिखा है, कल कहा न ? 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका'। अनन्तानुबन्धी क्रोध. मान, माया, लोभ किसे कहना ? कि स्वरूपाचरण का घात करे, उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं। समझ में आया ? भाई ! ऐसा आता है। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (में आता है), परन्तु यह सब दूसरों के व्याख्यान-टीका (है, ऐसा कहते हैं)। अरे.. ! सुन न

मुमुक्षु :- 'धवल' में है।

उत्तर :- सब में है, बहुत जगह है। अपने चौथे गुणस्थान में स्वसंवेदन नहीं आया था ? 'परमात्म प्रकाश' (में आया था)। स्वसंवेदन चौथे से शुरू होकर बारहवें छद्मस्थ को बहुत होता है; तेरहवें में केवलज्ञान। समझ में आया ? भगवान आत्मा.. ! अभी इसे इसके ज्ञान की यह क्या चीज है-इसका पता नहीं पड़ता और इसे अनुभव और सम्यग्दर्शन हो और धर्म हो.. कहाँ से.. धूलमें से धर्म होगा ? समझ में आया ?

कहते हैं, हम तो सुगुण का भण्डार और अशुद्धता से रहित (है)। अस्ति-नास्ति कर दी है-अनेकान्त किया है। इसमें तो यह बात है। यह है न अधिकार में ? यह गाथा। '**उदयति न नयश्री**'-उसमें है न ? '**अनुभव की दशा में सूर्य का दृष्टान्त**'-ऐसा करके 'बनारसीदासजी' ने यह '**उदयति न नयश्री**' श्लोक है, उसमें डाला है।

जैसे रवि-मंडल के उदै महि-मंडलमैं,
आतप अटल तम पटल विलातु है।
तैसें परमातमाकौं अनुभौ रहत जौलौं,
तौलौं कहूं दुविधा न कहूं पच्छपातु है।
नयकौ न लेस परवानकौ न परवेस,
निच्छेपके वंसकौ विधुंस होत जातु है।
जे जे वस्तु साधक हैं तेऊ तहां बाधक है,
बाकी राग दोषकी दसाकी कौन बातु है ।।१०।।

नय, निक्षेप, प्रमाण भी जहाँ पहले निश्चित किया था, वह भी जहाँ बाधक है तो फिर राग की मन्दता के दूसरे परिणाम इसे साधक हों-यह बात है नहीं। उस तेरहवीं गाथा की शुरूआत में यह बात ली है। '**भूदत्थेणाभिदगा**' यह कोई वहाँ मुनि की बात नहीं है। ऐ.. ! यह तेरहवीं गाथा की बात है, भाई ! परन्तु भूतार्थनय से आत्मा को जाने, उसे वहाँ सम्यग्दर्शन कहा, बस ! उसकी यहाँ बात है। यह समझ में आया ?

मुमुक्षु :- मुनि को हो, वह सब लागू पड़ता है।

उत्तर :- सब लागू पड़ता है। वह तो फिर आचरण के लिये.. जितना आचरण मुनि को हो, उसका एक अंश श्रावक को होता है। कहो, इसमें समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा अपना स्वरूप, स्वरूप, उसका आचरण; स्वरूप का आचरण। यह पुण्य-पाप का आचरण उसका स्वरूपाचरण है ? तब सम्यग्दर्शन कैसा ? उस विकार का आचरण तो अनादि का है। कहो, भाई ! पर-स्वरूप के आचरण और स्व-स्वरूप के आचरण में तो पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। पुण्य-पाप के भाव-विभाव पर स्वरूपाचरण है, परभाव आचरण है। वह परभाव आचरण धर्म है ? आत्मा तो अनन्तकाल से पर स्वरूप के आचरण से छूटकर उसमें से स्वरूप में आये, तब उसके स्वरूप में एकाग्र हुए बिना आचरण कहाँ से प्रगट होगा ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहाँ से प्रगट होंगे ? समझ में आया ?

यहाँ तो यही कहा है-(मैं) भगवान आत्मा सुगुण का करण्ड-भण्डार हूँ। अनन्त आनन्द आदि गुण का भण्डार और '**कलनितै च्युत...**' मैं स्वयं ही अशुद्ध से च्युत हूँ, मेरे स्वरूप से ही मैं अशुद्ध से च्युत हूं। क्या (कहा) ? मेरे स्वरूप से ही अशुद्ध से च्युत हूँ, हटा हुआ, च्युत अर्थात् रहित। मैं पूर्णानन्द ज्ञान से सहित, मैं स्वयं अशुद्धता से च्युत हूँ अर्थात् रहित ही हूँ। आहा..हा... ! यह बात सुनने मिलना मुश्किल पड़ती है। यह सुनि नहीं, विचारे नहीं, मनन नहीं करे और अन्दर में प्रयोग नहीं करे और उसे धर्म हो जाए.. ऐसा का ऐसा अनन्तकाल से भटकता है। कहते हैं कि मैं तो अनन्तगुणों का करण्ड भण्डार हूँ, मुझ में अशुद्धता (से) रहित हूँ; मैं स्वयं ही अशुद्धता से रहित हूँ-यह आत्मा कहलाता है। समझ में आया ?

भावार्थ :- 'इसे स्वरूपाचरण चारित्र के समय साध को आत्म-अनुभव में...' यह

साधक इसमें लिखा है, हाँ ! पहले एकबार कहा था। इसमें कहा था, पहले लिखा है, इसमें लिखा है। '**आत्म-अनुभव में प्रमाण, नय और निक्षेप का विकल्प तो नहीं उठता...**' विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति का उत्थान अनुभव में नहीं होता, '**परन्तु गुण-गुणी का भेद भी नहीं होता..**' लो ! मैं भगवान आत्मा अनन्त गुणवाला और यह अन्त गुण-ऐसा भेद का विकल्प भी वहाँ नहीं है। गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी शुभराग है, शुभ-उपयोग है; वह शुद्ध-उपयोग नहीं है। आहा..हा... ! '**ऐसा ध्यान होता है।**' ऐसी एकाग्रता शुद्ध समकित में-अनुभव में, मैं गुणी और यह गुण-ऐसा भेद का शुभराग भी नहीं होता, शुद्धोपयोग होता है। (भेद का विकल्प) तो शुभराग है, शुभउपयोग है। अन्तर के ध्यान में उसे शुभराग-गुण-गुणी का भेद नहीं और अकेला शुद्धोपयोग होता है।

'**प्रथम ऐसा ध्यान होता है...**' देखो ! '**कि मैं अनन्त दर्शन, अन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यरूप हूँ; मुझमें कोई रागादिकभाव नहीं है।**' 'आन' में आ गया न ? 'आन' में। '**मैं ही साध्य, मैं ही साधक हूँ...**' देखो ! मैं रागादिरहित, अशुद्धता से रहित-ऐसा शुद्धभाव ही साध्य और साधक, वह मैं ही हूँ। निश्चय साध्य-साधक कहा था। समझ में आया ? साध्य निर्मल पूर्ण और साधक राग-यह यहाँ नहीं है। पूर्ण निर्मलानन्द आत्मा की दशा, वह साध्य है और मैं ही निर्मलानन्द और उसका साधनेवाला मैं अपूर्ण निर्मलदशा, वह मैं साधक हूँ; परन्तु साधक और साध्य में मेरी दशा ही दोनों में निर्मल है। साधक में राग की मन्दता साधक और पूर्ण साध्य-उसमें मैं हूँ नहीं। कहो, समझ में आया ?

'**तथा कर्म और कर्म के फल से पृथक् हूँ।**' आठ कर्मों से तो पृथक् परन्तु आठों के उदय के फल से पृथक्। ओ..हो... ! १४८ प्रकृतियाँ ली है न ? १४८ प्रकृतियां तो नहीं, परन्तु उनकी तरफ का वर्तमान पर्याय का जुड़ान होकर मुझमें हीनदशा (होती है), वह (भी) नहीं। समझ में आया ? ईश्वर की गद्दी पर बैठने जाए तो वहाँ अन-ईश्वरता कैसी ? समझ में आया ? '**मैं कर्म और कर्म के फल से पृथक् हूँ। ज्ञान-दर्शन चेतनास्वरूप निर्मल ऐश्वर्यवान...**' मैं ज्ञान-जाननेवाला, दर्शनस्वरूप, ऐश्वर्य, बलवान (हूँ)। '**तथा अखण्ड सहज शुद्ध गुणों का भण्डार-**' लो ! मैं तो अखण्ड गुण (का भण्डार हूँ)। गुण में खण्ड कैसा ? एकरूप गुण अखण्ड गुण है।

द्रव्य, अखण्ड एक सम्पूर्ण होने से उसका ज्ञानादि स्वभाव सम्पूर्ण है। 'श्रीमद्' ने लिया है न ? 'श्रीमद्' का वाक्यहै। जीवद्रव्य एक अखण्ड सम्पूर्ण होने से उसकी ज्ञान-आनन्द आदि सामर्थ्य सम्पूर्ण है। जो सम्पूर्ण वीतराग होता है, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है-यह वाक्य है। अपने स्वाध्याय मन्दिर में कोने में है।

जीव एक अखण्ड, ऐसे (ही) गुण एक अखण्ड-ऐसा लेना। वहाँ जीव को पूरा द्रव्य लिया है। यहाँ भी गुण एक अखण्ड (लिया है)। गुण अखण्ड है। गुण में खण्ड कैसा ? ज्ञान अखण्ड, दर्शन अखण्ड, आनन्द अखण्ड-सब होकर द्रव्य अखण्ड है। समझ में आया ? आहा..हा..! ज्ञान-दर्शन-निर्मल (तथा) अखण्ड, वह भी सहज। मेरा स्वभाव ही ऐसा अखण्ड है। ऐसे शुद्ध गुण का मैं भण्डार हूँ। समझ में आया ?

भण्डार..भण्डार.. पहले कहा था न ? निधि। सातवें में कहा था। सातवें श्लोक में कहा था न ? यह आया-'**सुनिये स्वरूपाचरण अब; जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब।**' यह सातवें श्लोक की अन्तिम दो (लाईने) थी। यही का यही सातवां श्लोक है न ? '**सुनिये स्वरूपाचरण अब; जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै पर की प्रवृत्ति सब।**' देखो ! इसमें पैसा-बैसा की निधि नहीं। भाई ! आहा..हा...! उन्हें पैसे की कहाँ पड़ी है ? कहो, समझ में आया ? भगवान आत्मा...कहते हैं कि स्वरूपाचरण को सुनो कि जिससे आत्मा की निधि प्रगट होती है। '**मिटै पर की प्रवृत्ति सब।**' यह विकल्प आदि की प्रवृत्ति मिटकर स्वरूप के आचरण की प्रवृत्ति होती है। उसे भगवान, मोक्ष का मार्ग और उसे अनुभव कहते हैं।

'**आशय यह है कि समस्त प्रकार के विकल्पों से रहित..**' संक्षिप्त किया, '**निर्विकल्प आत्म-स्थिरता को...**' निर्विकल्प आत्मस्वरूप की स्थिरता को '**स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं।**' यह चारित्र चौथे (गुणस्थान) से आंशिक प्रगट होता है। पाँचवे में विशेष, छठवें में विशेष, सातवें में विशेष होकर केवलज्ञान में पूर्ण (प्रगट होता है)। यह स्वरूपाचरणचारित्र ही मोक्ष का मार्ग है।(विशेष कहेंगे...) (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)